सामाजिक न्याय के लिए शिक्षा

कैथी हाइटन

किसी भी प्रकार का शिक्षा संबंधी विमर्श शिक्षा के उद्देश्यों पर टिका होता है कि हम स्कूलों के माध्यम से क्या करना चाहते हैं ? शिक्षा के उद्देश्य वर्तमान समाज की जरूरतों एवं समाज की भावी संकल्पना से निर्धारित होते हैं। लोकतांत्रिक समाज के लिए समता और न्याय अपरिहार्य मूल्य हैं। कैथी हाइटन कहती हैं कि शिक्षा के उद्देश्यों की समझ हमें शैक्षणिक व्यवहार/अभ्यास को और अधिक सचेत होकर नियंत्रित करने की क्षमता प्रदान करती है। यह लेख इस विषय पर प्रकाशित तीन पुस्तकों की समीक्षा करते हुए बताता है कि कक्षाओं में जो कुछ भी होता है वह सामाजिक असमानता को चुनौती देने वाला और बेहतर समाज का निर्माण करने के लिए होना चाहिए।

यह आज के समय में इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आजकल विद्यालय जिस तरह की मेधा का भ्रम पैदा करते हैं और उसे उचित ठहराने में मदद करते वह विद्यार्थियों को विश्व बाजार की प्रतिस्पर्द्धा में खड़े होने में तो मदद कर सकती है लेकिन विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विविध पक्षों को अछूता छोड़ देती है और यथास्थिति को बनाए रखने में ही मदद करती है।

अमेरिका में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्र-छात्राओं के लोकतांत्रिक नागरिक बनने के लिए उनमें आवश्यक ज्ञान, कौ शल, आदतों और अभिवृत्तियों का विकास करना न हो तो भी यह मुख्य उद्देश्यों में से एक तो निश्चत रूप से है। इसमें जो चीजें शामिल हैं, वे हैं - आलोचनात्मक सोच, संवाद में भागीदारी, दूसरों के अधिकारों और जरूरतों को तवज्जो देना, भिन्न समुदायों के साथ मेल-मिलाप से रहना, महत्त्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों पर सक्रियता, स्वयं द्वारा चयनित विकल्पों और निर्णयों के प्रति जवाबदारी महसूस करना और ऐसे काम करना, जिनसे ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हों कि सब इंसान अपनी क्षमताएं पूर्ण रूप से विकसित कर सकें। माइकल ऐपल और जेम्स बीन के अनुसार लोकतांत्रिक समाज विभिन्न प्रकार की महत्त्वपूर्ण बुनियादों पर निर्भर होते हैं : हम ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करते हैं जिनमें विचारों का स्वतंत्र आदान-प्रदान हो सके, तब भी जब ये विचार लोकप्रिय न हों, ताकि जो निर्णय हम लें, वह समग्र जानकारियों पर आधारित हों; हम समस्याओं को हल करने के लिए तथा साथ जीने की अधिक समृद्ध संभावनाओं की कल्पना करने के लिए अन्य नागरिकों पर और उनके साथ मिलकर काम करने की अपनी क्षमता पर विश्वास करते हैं; विचारों और विकल्पों को परखने के लिए हम आलोचनात्मक सोच, पुनर्चिंतन और विश्लेषण की अपनी आदतों को काम में लेते हैं बजाय संकुचित पूर्वाग्रहों, सूचना शून्य मतों और व्यक्तिगत पक्षप्रियता पर विश्वास करने के; और ये मुद्दे हैं जिनसे हम सरोकार रखते हैं - मानवाधिकार, अल्पसंख्यकों के साथ व्यवहार, नजदीकी हों या दूर के, सभी की खुशहाली और अन्ततः 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की दृष्टि। सामाजिक न्याय लोकतांत्रिक जीवन की अन्तर्रंग विशेषता है, ऐसे लोकतांत्रिक समाज की जो आदर्श और

लेखक परिचय :

डिपार्टमेंन्ट ऑफ एज्युकेशनल एडमिस्ट्रेशन एण्ड हायर एज्युकेशन, साउदर्न इलिन्यूअस यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर

अनुवाद :

सुरेन्द्र कुशवाह

न्यायप्रिय समाजों की गणना में आते हों। ये समाज समत्व, आत्म-निर्णय और स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। ये छात्र-छात्राओं को न्यायप्रिय नागरिक बनने की शिक्षा देते हैं, जो वाल्टर पार्कर के अनुसार, ''सिद्धान्तों का पालन करते हैं और सहृदय होते हैं, जो दूसरों को नुकसान नहीं पहुंचाते और न ही उनका शोषण करते हैं, और जो यह मानते हैं कि न्यायप्रिय संस्थानों को अन्याय से बचाना और उनकी रक्षा करना उनका कर्तव्य है। शैक्षिक सिद्धान्त की ही एक महत्त्वपूर्ण परंपरा है जो लोकतंत्र और सामाजिक न्याय को विद्यालयी शिक्षा के प्रयोजनों और लक्ष्यों की अवधारणा में आगे रखती है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में सामाजिक नव-निर्माणवादियों में यह चीज सबसे ज्यादा देखने को मिलती है और हाल के वर्षों में आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्रियों में, सांस्कृतिक अध्ययनों का प्रयोग करने वालों में और वैश्वीकरण का विरोध करने वाले कार्यकर्ताओं में यह चीज सबसे ज्यादा देखने को मिलती है। बहुत पहले 1932 में जॉर्ज काउन्ट्स ने एक नई सामाजिक व्यवस्था के निर्माण की दिशा में कार्य करने के लिए शिक्षाकर्मियों से गुजारिश की थी; एक ऐसी व्यवस्था जिसमें हम इस विचार को गंभीरता से प्रतिपादित करें कि लोकतंत्र मात्र एक कारगुजारी (चुनाव प्रक्रिया आदि) से कहीं अधिक है, ''यह पुरुषों और महिलाओं की नैतिक समानता से संबंधित एक मनोभाव है'' और ''एक ऐसे समाज की ओर बढ़ने की महत्त्वाकांक्षा है जिसमें यह भावपूर्ण रूप से संपादित हो सके। इसी प्रकार जोन डिवी ने कहा था कि, ''लोकतंत्र सरकार (शासन करने की प्रणाली) से अधिक है, यह बुनियादी तौर पर आपसी सद्भाव से जीवन जीने की शैली है, संयुक्त आनुभविक संवाद है।'' डिवी की लोकतंत्र की संकल्पना और दृष्टि में - असली भाईचारा (दिखावे का नहीं), संवाद, एक-दूसरे के काम आना, विचारों और अनुभवों को आपस में बांटना और सहकारिता आधारित उपक्रमों में लोगों की भागीदारी - शामिल है।

कुछ ही समय पहले जिन शैक्षिक विचारधाराओं ने लोकतंत्र और सामाजिक न्याय के मुद्दों से सर्वाधिक सचेतन ढंग से रूबरू होने की कोशिश की है, वे हैं आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र, सांस्कृतिक अध्ययन और थोड़े लचीलेपन के साथ कहें तो वैश्वीकरण के खिलाफ उठे आन्दोलन। ये विचारधाराएं प्रायः परस्पर एक दूसरे को ढांपती और भेदती हुई चलती हैं जिनमें एक बात समान होती है कि ये दुनिया के दुःख को दूर करने के प्रति प्रतिबद्ध हैं। आलोचनात्मक शिक्षाशस्त्रियों का तर्क है कि विद्यालयी शिक्षा बुनियादी तौर पर व्यक्ति के विकास और सामाजिक उत्थान के लिए होनी चाहिए; जो हम कक्षाओं में करते हैं, उसका संबंध उन प्रयासों से होना चाहिए जो सामाजिक असमानता को चुनौती दें, और एक बेहतर समाज का निर्माण करें। पीटर मैकलारेन इसी बात को सारगर्भित सुस्पष्ट तरीके से रखते हुए, कहते हैं कि, ''आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र की बुनियाद इस धारणा पर टिकी है कि विद्यालयी शिक्षा का काम, नैतिक दृष्टि से, पहले, व्यक्ति और सामाजिक सशक्तिकरण है और बाद में तकनीकी कौशल में महारत हासिल करना।'' वे आगे कहते हैं कि, ''आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र जबकि कई प्रकार की सैद्धान्तिक परंपराओं और विचारों का प्रतिनिधित्व करता है, इसके पैरोकार, अपने उद्देश्यों में एकजुट हैं : शक्तिहीन को सशक्त बनाना और विद्यमान सामाजिक असमानताओं और अन्यायपूर्ण स्थितियों को समाप्त करना।'' शिक्षा के सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्र में काम करने वाले आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र से प्राप्त अन्तर्दृष्टि से प्रबलरूप से प्रभावित होते हैं, जब वे शिक्षा के बारे में कहते हैं कि इसे आलोचनात्मक, हस्तक्षेपी, समूल परिवर्तनकारी और समर्थनवादी होना चाहिए। हेनरी जीरोक्स लिखते हैं कि, आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र की तरह ''सांस्कृतिक अध्ययन का सरोकार भी संस्कृति, ज्ञान और शक्ति के बीच संबंधों से होता है।'' इन संबंधों को समझने के बाद हम अपने शैक्षणिक व्यवहार/अभ्यास को और अधिक सचेत होकर नियंत्रित कर सकते हैं और ऐसे तरीके सोच सकते हैं जो छात्र-छात्राओं की यांत्रिक तार्किकता की समस्या को हल करने में मदद कर सकें, सामाजिक जिम्मेदारी और नैतिक दायित्व की भावना उनमें विकसित कर सकें और लोकतंत्र के विकास में विद्यालयी शिक्षा की भूमिका को गंभीरता से ले सकें। कुछ ही समय पहले आलोचनात्मक शिक्षाविदों का ध्यान वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों को चुनौती देने की ओर गया है, विशेष रूप से 'खुला' बाजार रूपी अनुष्ठान के इसके प्रकट रूप और तद्जनित विश्व पूंजीवाद के प्रसार को लेकर। उनकी चिन्ता है कि बाजार द्वारा संचालित आदेशात्मक क्रियाएं शैक्षिक निर्णयों को अधिकाधिक निर्देशित कर रही हैं और इसमें आर्थिक लाभ की संकीर्ण मानसिकता के कारण लोगों की जरूरतों की अनदेखी कर दी गई है, बल्कि उनकी बलि दे दी गई है।

आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र, सांस्कृतिक अध्ययन और वैश्वीकरण का विरोध करने वाले तथा उसी तरह के अन्य शैक्षिक आन्दोलनों और परंपराओं का यह विश्वास है कि शिक्षा और सामाजिक न्याय के मुद्दे मूलतः एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। वे एकमत हैं कि स्कूल हमारी यह कल्पना करने में मदद करते हैं और अहम भूमिका निभाते हैं कि हम किस प्रकार के समाज में जीना चाहते हैं और हम अपने विजन को कैसे साकार कर सकते हैं। सामाजिक न्याय के ढांचे को वे कई प्रकार से शिक्षा से जोड़कर देखते हैं। जीनी ऑक्स और मार्टिन लिपटन का कहना है कि सामाजिक न्याय का परिप्रेक्ष्य शिक्षा के संदर्भ में तीन प्रकार से प्रभावी हो सकता है।

पहला, यह राजनीति और मूल्यों को उघाड़ने, जांचने और उनकी समीक्षा करने की हम से अपेक्षा करता है, जो शैक्षिक निर्णयों और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। उस समय जब हम पाठ्यचर्या और शिक्षण को व्यवस्थित करने से संबंधित अधिक यांत्रिकता बरतने वाले मुद्दों को जानने का प्रयास करते हैं। दूसरा, यह हमें शैक्षिक सामान्य समझ को चुनौती देने के लिए और ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछने के लए विवश करता है - हम स्कूल में जो करते हैं, वह क्यों करते हैं और उससे लाभ किसको होता है ? तीसरा, यह हमें उन तरीकों पर विचार करने के लिए आमंत्रित करता है जिनके द्वारा विद्यालयी शिक्षा प्रायः असमानताएं पैदा करने, बनाए रखने और पुनः निर्मित करने में योगदान देती है, खासतौर से जाति, प्रजाति, वर्ग, लिंग, भाषा आदि के आधार पर। इससे हम अन्ततः सशक्त विकल्पों का निर्माण कर सकते हैं। सामाजिक न्यायपरक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य समाज में सभी वर्गों की पूर्ण और समान भागीदारी है। इसी साझा प्रयास से समाज ऐसा स्वरूप ग्रहण करता है जो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। जिस समाज में न्याय होता है वहां संसाधन, वस्तु, सेवाएं और अवसर सभी को समान रूप से उपलब्ध होते हैं। वहां व्यक्ति ही अपने आप में लक्ष्य होता है जो अपनी योग्यता के बल पर अपने जीवन के उद्देश्यों को अपने परिवेश के लोगों के परस्पर निर्भरतापूर्ण संबंधों के मद्देनजर तय करता है। लोगों को कुछ लोगों के लाभ के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाता। लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप 'वे जितने अपने बारे में जागरूक होते हैं, उतना ही उन्हें दूसरों के प्रति और दूसरों के साथ संपूर्ण समाज के प्रति सामाजिक जिम्मेदारी का भी बोध रहता है'।

यद्यपि सामाजिक न्याय के नजरिए को शिक्षा से जोड़ने पर हमेशा ही शिक्षाविदों ने ध्यान दिलाया है, इस नजरिए ने कभी भी प्रमुख स्थान ग्रहण नहीं किया है। यह बात वर्तमान माहौल में विशेष रूप से सच है, जिसमें शिक्षकों को बहुत सीमित उद्देश्यों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए कहा जा रहा है। खासतौर से मानक प्राप्तांकों के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए। संभवतः यह इसलिए किया जा रहा है क्योंकि ऊंचे प्राप्तांक दर्शाते हैं कि स्कूल जनता के लिए जवाबदेह हैं और हममें यह विश्वास पैदा करते हैं कि अमेरिकी छात्र-छात्राएं विश्व-बाजार की प्रतिस्पर्धा में टिक पाएंगे। पिछले दशक में सीखने-सिखाने का अबाधित गति से मानकीकरण हुआ है और विद्यार्थियों की पहले की अपेक्षा ज्यादा बार परीक्षा ली जाती है। डिबोराह मायर का मानना है कि, ''सार्वजनिक शिक्षा को नए सिरे से पुनर्परिभाषित किया जा रहा है, व्यापक रूप में फैले इस विश्वास के साथ कि बाहर से थोपी गई परीक्षाओं पर ध्यान केन्द्रित करने से हम उपलब्धि स्तर को बढ़ा सकते हैं और अपने स्कूलों में जनता का विश्वास पुनः स्थापित कर सकते हैं। मात्र टेस्ट के स्तर को उठाने पर ध्यान केन्द्रित करने से अनेक समस्याप्रद परिणाम सामने आते हैं, जिनका एक अच्छा दस्तावेजीकरण हो चुका है। उदाहरणार्थ, टेस्ट पर ज्यादा जोर देने से पाठ्यचर्या संकुचित हो जाती है, जिसमें शिक्षण कार्य को टेस्ट की तैयारी कराने मात्र से बस थोड़ी-सी ज्यादा तरजीह दी जाती है, छात्रों की सीखने की आंतरिक प्रेरणा और उत्पन्न चुनौतियों से रूबरू होने से बचने की कोशिश होती है क्योंकि उन्हें सही उत्तरों के लिए पुरस्कृत किया जाता है न कि जटिल आलोचनात्मक चिन्तन के लिए; यह सीखने की प्रक्रिया को समृद्ध करने की बजाए विपन्न करता है खासतौर से तब, जब वित्तीय संसाधनों को अनावश्यक समझे जाने वाले कार्यक्रमों जैसे कला, संगीत और शारीरिक शिक्षा से हटाकर अन्य विषयों पर खर्च कर दिया जाता है।

मानकीकरण की इस प्रवृत्ति को चुनौती देने के लिए और विद्यालयी शिक्षा के लोकतांत्रिक और सामाजिक न्याय पर आधारित विकल्पों (लक्ष्यों) की ओर और अधिक ध्यान देने हेतु, हमें शैक्षिक वाममार्गी विचारधारा से प्रेरित एक सशक्त और गतिशील संवाद की आवश्यकता है, जो सामाजिक न्याय की विभिन्न धाराओं को एकजुट करने में मदद कर सके और साथ ही प्रगतिशील शैक्षिक बदलाव को गति और दृष्टि (सिद्धान्त और व्यवहार) दे सके। आलोचनात्मक शैक्षिक विचार पर आधारित कुछ ही समय पहले संपादित तीन संग्रह इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में हमारी मदद कर सकते हैं। *प्रोमिजेज टु कीप : कल्चरल स्टडीज, डेमोक्रेटिक एज्युकेशन एण्ड पब्लिक लाइफ* में ग्रेग दिमित्रियादिस और डेनिस कार्लसन ने आलोचनात्मक सिद्धान्त, सांस्कृतिक अध्ययन, व्यवहारिकता, उत्तर-आधुनिकतावाद, लोकतांत्रिक शिक्षा और लोकप्रिय संस्कृति से प्राप्त अन्तर्दृष्टियों का संचयन किया है। इन सबको मिलाकर संभावनाओं के एक सकल स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया गया है, ''जिसे एक ऐसे आरंभिक प्रयास के रूप में देखा जा सकता है, जहां से, रणनीति की दृष्टि से, एक ऐसी एकीकृत प्रगतिशील दृष्टि (विजन) की निर्मिति का प्रयास किया जा सकता है जो यह बता सके कि शिक्षा क्या कर सकती है और उसे क्या करना चाहिए - एक ऐसी दृष्टि जो लोकतांत्रिक शिक्षा और सार्वजनिक जीवन पर विभिन्न परंपराओं और विमर्शों में परस्पर और उनके बीच चल रहे संवाद में से उभरे।'' नयाइन डोलबी और ग्रेग दिमित्रियादिस की *लर्निंग टु लेबर इन न्यू टाइम्स* में लेखकों ने इन्हीं अन्तर्दृष्टियों को आगे विकसित करते हुए पाउल विलिस के शास्त्रीय मूल पाठ लर्निंग टु लेबर पर दृष्टिपात किया है और उन तरीकों पर विचार किया है जो सामाजिक वर्ग की पुनर्निर्मिति पर उनकी दृष्टि और चिंतन को

वर्तमान युग में भी प्रसांगिक ठहराते हैं। वैकल्पिक प्रगतिशील शैक्षिक दृष्टि से सम्पन्न विचारों को व्यवहारिक धरातल पर लाना फ्रांसिसको इबानेज कोरिस्को और एरिका माइनर्स की पुस्तक *पब्लिक एक्ट्सः डिसएप्टिव रीडिंग्स ऑन मेकिंग करिक्युलम पब्लिक* के मुख्य लक्ष्यों में से एक है। इस पुस्तक में ''सक्रिय शिक्षाविदों, शोधकर्ताओं और कलाकारों के उन लेखों को संग्रह में लेने का प्रयास किया गया है, जो सामाजिक बदलाव की स्थानीय परियोजनाओं में संलग्न हैं।''

समग्रता में देखा जाए तो ये तीनों पुस्तकें शिक्षा के कुछ उन संदर्भ स्रोतों को उपलब्ध कराती हैं, जो सामाजिक न्याय और लोकतंत्र के मुद्दों को प्रमुखता देते हैं। विशेष रूप से वे प्रगतिशील शैक्षिक विमर्श को समृद्ध करने में मदद करते हैं और वैकल्पिक शैक्षिक अभ्यास (प्रैक्टिस) हेतु ठोस और सटीक दृष्टि प्रस्तुत करते हैं। आगे जिन चीजों का वर्णन किया जाएगा, उनमें इन्हीं में से कुछ का वर्णन होगा और शैक्षिक सिद्धांत, शोध और व्यवहार से संबंधित निहितार्थ प्रस्तुत किए जाएंगे। पहले भाग में मैं संक्षेप में प्रत्येक पुस्तक के मुख्य विषयों, ढांचों और उनके व्यवस्थित रूप का वर्णन करूंगी। दूसरे भाग में मैं कई प्रकार के तरीकों को प्रस्तुत करूंगी, जिनके द्वारा इन पुस्तकों के निबंध उस विमर्श को समृद्ध करते हैं, जो सामाजिक न्याय के लिए शिक्षा को जीवंत बनाते हैं, विशेष रूप से तब जब हम आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र, वैश्वीकरण सिद्धान्त और सांस्कृतिक अध्ययन में उनके योगदान पर नजर डालते हैं। अन्त में मैं सामाजिक न्याय के लिए शिक्षा के विजन और उनकी संभाव्यता पर विचार प्रस्तुत करूंगी। ऐसा करते समय उन चीजों पर ध्यान दिया जाएगा जो हम इन पुस्तकों में दिए गए सिद्धांतों और प्रैक्टिसेज से सीख सकते हैं। लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि इनमें कमियां क्या हैं तथा कुछ और जो हमें चाहिए इसके लिए दिशा निर्देश भी प्रस्तुत करने होंगे, यदि हमें शिक्षा में सामाजिक न्याय के मुद्दों के महत्त्व को गंभीरता से लेना है।

सिहांवलोकन

क्योंकि सभी तीनों पुस्तकें जिनकी समीक्षा की जा रही है संपादित पुस्तकें हैं, उनकी वृहत् विषय सामग्री को संक्षिप्त रूप में रख पाना या केन्द्रीय बिन्दुओं के उन भागों को चिह्नित कर पाना, जिन पर इन सभी ने विचार किया है (इसके परे कि वे सभी सामाजिक न्याय के लिए शिक्षा के विषय पर बोलते हुए लचीली भाषा का प्रयोग करते हैं), आसान नहीं है। कुछ निबन्ध जो इन पुस्तकों में शामिल किए गए हैं, वे सब जगह छाए हुए हैं और अनेक प्रकार के इतने विषयों पर विचार करते हैं कि कोई स्पष्ट अवधारणात्मक पथ ढूंढ़ना मुश्किल होता है। इसी में सामाजिक न्याय के कार्य की चुनौतियों का प्रतिबिम्ब भी झलकता है : इसमें निहित विचारों की समृद्धता और विविधता को आसानी से थोड़े में नहीं समेटा जा सकता, इसकी पैरवी करने वाले भी प्रायः अलग-अलग विचारधाराओं से हैं और इनमें परस्पर संवाद भी नहीं है; इसके अलावा, इस सामग्री को किस आधार पर शामिल और व्यवस्थित किया गया है, यह भी कभी-कभी स्पष्ट नहीं होता है, गुणवत्ता और प्रसांगिकता के स्तर पर भी इन लेखों में असमानता है और यह निराशाजनक है कि इन संग्रहों के लेखकों के बीच परस्पर कोई सारगर्भित संवाद देखने को नहीं मिलता। दो पुस्तकें *प्रोमिजेज टु कीप और लर्निंग टु लेबर इन न्यू टाइम्स* अमेरिकन एज्युकेशनल रिसर्च एसोसिएशन के पैनलों की बैठकों का परिणाम है जबकि पब्लिक एक्ट्स में सक्रिय लोगों और संपादकों से संबद्ध समर्थकों को एक जगह प्रस्तुत किया है।

रेमण्ड एलन मोरो और कारलोस एलबर्टो टोरेस *प्रोमिज टु कीप* पुस्तक के आमुख में घोषणा करते हैं कि यह पुस्तक जैसा कि इसके नाम से विदित है, ''हमें बताती है कि सार्वजनिक शिक्षा में किन वायदों (कार्यों) को पूरा करना है।'' इन कार्यों में शामिल है कि विद्यालयी शिक्षा को लोकतांत्रिक वृत्तियों और संवेदनाओं को पोषित करना चाहिए, इसे आत्म-चिंतन करने और सामुदायिक रूप से सक्रिय होने में छात्र-छात्राओं की मदद करनी चाहिए और एक अधिक मानवीय, गरिमापूर्ण और समानता आधारित भविष्य का निर्माण करने में योगदान करना चाहिए। कार्लसन और दिमित्रियादिस अपने आरंभिक अध्याय की शुरूआत ब्लेड रनर नामक लोकप्रिय मूवी से करते हैं जिसमें एक चिंताजनक भविष्य का वर्णन किया गया हैः एक ऐसा राज्य जिसमें पुलिस का शासन होगा, जहां बहुराष्ट्रीय पूंजीवादी कारपोरेशन की आवश्यकताओं के अनुरूप आम जिंदगी चलेगी, जहां इंसानों की 'प्रोग्रामिंग' इस तरह होगी कि वे पूंजीवादी मशीनरी को कार्यकुशलतापूर्वक उसकी जरूरत की सब चीजें उपलब्ध करवाएंगे और जहां वे ऐसे उपभोक्ता में तब्दील हो जाएंगे जो तुरंत आज्ञा का पालन करेंगे, सोचना - विचारना जरूरी नहीं समझेंगे और दब्बू किस्म के होंगे। दुःख की बात है पर लेखकों का कहना है कि वर्तमान शैक्षिक संवाद और व्यवहार (प्रैक्टिस), जो ऊंचे मानकों वाली परीक्षा प्रणाली (टेस्ट) पर केन्द्रित है, स्कूलों में कारपोरेट क्षेत्र की रुचि और जुड़ाव और बढ़ती हुई जवाबदेही स्कूलों को विशिष्ट रूप में इसी प्रकार के खोखले भविष्य की और धकेल रही है। फिर भी उन्हें आशा है कि हम एक वैकल्पिक विमर्श का सृजन कर सकते हैं जो लोकतंत्र और सामाजिक न्याय के हित में सार्वजनिक विद्यालयी शिक्षा का नवीकरण कर सके। ऐसे प्रयास उन्हें शिक्षा के सांस्कृतिक अध्ययनों के नवीकृत विजन में देखने को

मिलते हैं, ''जो विशिष्ट सांस्कृतिक परिवेश में शिक्षा का स्वरूप क्या हो और उसे कैसे साकार किया जाए, इसकी समीक्षा के लिए विभिन्न अनुशासनों में अन्तःक्रियात्मक स्थान उपलब्ध कराते हैं।''

प्रोमिजेज टु कीप के बारह अध्यायों में भिन्नता भी है और गतिशील रहते हुए समन्वय का प्रयत्न भी : समीक्षा और संभावना के बीच, सूक्ष्म और वृहद के विश्लेषण के बीच, सरोकारों और पाठ्यचर्या के बीच और शिक्षाशास्त्र तथा बड़े मुद्दों के बीच सार्वजनिक शिक्षा की उस भूमिका के साथ जो आज के संक्रमण काल में लोकतांत्रिक सार्वजनिक जीवन का निर्माण करने में सहायक हो सके। यह पुस्तक मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित की गई है, यद्यपि प्रत्येक भाग में विषयों की जो विविधता है, वह किसी अर्थपूर्ण श्रेणीबद्धता की इजाजत नहीं देती। पुस्तक के पहले भाग में पांच अध्याय, जिनका सामूहिक शीर्षक 'एज्युकेशन एण्ड दी न्यू टेरेन' है, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों से रूबरू होते हैं और विद्यालयी शिक्षा की सैद्धांतिक और व्यावहारिक दृष्टि (विजन) को प्रस्तुत करते हैं। इनमें वे निबन्ध हैं जो लोकप्रिय संस्कृति पर नजर रखते हुए समाज के विभिन्न वर्गों की शैक्षिक आवश्यकताओं के विजन के अन्तर्गत संभावनाओं को तलाशते हैं और उनके सशक्तीकरण और सामाजिक समीक्षा के उद्देश्य से उनका वर्णन करते हैं। पुस्तक का दूसरा आधा भाग 'रिइमेजिंग करिक्युलम एण्ड पेडागोजिकल प्रैक्टिस', में ज्यादातर वे उदाहरण दिए गए हैं जो बताते हैं कि हम सांस्कृतिक अध्ययनों को कक्षा में लाने के लिए क्या कर सकते हैं। इस भाग में दिए गए निबंध कलाकारों की रचनाओं, आलोचनात्मक फिल्मों, संचार माध्यमों में प्रजातियों का चित्रण और कक्षा में नेतृत्व से संबंधित वर्णनों और सामाजिक विवादों को प्रस्तुत करने के तरीकों पर प्रश्न उठाते हैं।

अपनी पुस्तक *लर्निंग टू लेबर* में विलिस ने इंगलैण्ड के औद्योगिक शहर हैमरटाउन में जिन्दगी बसर करने वाले श्रमिक वर्ग के बारह बच्चों के बारे में विस्तार से लिखा है। विलिस ने दलील दी है कि जब बड़ी सामाजिक ताकतें व्यक्तियों को दबाती हैं तो वे उनके साथ जो अन्तर्क्रिया करते हैं, उसके बारे में सूक्ष्म स्तर पर हमारी समझ वर्तमान आलोचनात्मक सिद्धान्तों से नदारद है। यह बताना जरूरी है कि विलिस सामाजिक पुनर्रचना के सिद्धांत से अत्यन्त प्रभावित होने के बावजूद उस सिद्धान्त में निहित नियतिवाद और व्यापक स्तर को अमूर्त रूप देने के आलोचक रहे हैं। वे पहल करने वाले उन लोगों में से एक थे जिन्होंने सांस्कृतिक उत्पादन अथवा विरोध का सिद्धान्त विकसित किया। उनका तर्क था कि व्यक्ति बड़ी व्यवस्थाओं और ढांचों के प्रभावों को झेलते हुए भी, उनका प्रतिरोध करता है, तत्संबंधी वार्ताओं में उन्हें कम महत्त्व देता है और इन ढांचों को चुनौती देता है, कभी-कभी तो वह ऐसा उनकी वर्चस्वी विचारधारा को भेदते हुए भी करता है जो आवृत्तिक उत्पादन के लिए जरूरी होती है। इससे परिवर्तन की संभावनाएं बनती हैं। *लर्निंग टु लेबर* में विलिस ने दर्शाया है कि श्रमिक वर्ग के बच्चे कैसे अपने जीवन में वृहत्त संस्कृति के उन पहलुओं को सृजनात्मक तरीके से और उनमें आमूल परिवर्तन करते हुए इस तरह पुनर्निर्मित कर लेते हैं कि वे अन्ततः उन्हें विशष्टि प्रकार के कई कामों में प्रयोग कर सकते हैं। वे पहल करने वाले उन लोगों में से थे, जिन्होंने आलोचनात्मक सामाजिक सिद्धान्त और नृविज्ञानी अभ्यास को एक दूसरे के समीप लाने का काम किया और इस बात की पैरवी की कि व्यक्ति अपनी जिंदगी कैसे जीता है, इसमें सृजनात्मक संभावनाओं को जगह देना जरूरी है। डोलबी और दिमित्रियादिस का मानना है कि विलिस ने हमारी यह जानने में मदद की कि, ''जो युवा करते हैं, वह महत्त्वपूर्ण होता है'' और यह जानने के लिए प्रेरित किया कि ''जमीन से ऊपर'' किस प्रकार की नीतियां सार्थक होंगी।

संक्षिप्त आमुख और प्रस्तावना के बाद संपादकों ने *लर्निंग टु लेबर* को तीन भागों में बांटा है। पहले भाग में लेखक *लर्निंग टु लेबर* पर पुनः चिंतन करते हैं और यह जानने का प्रयास करते हैं कि इस पुस्तक ने उनको सोच, वर्ग, प्रजाति, नस्ल, लिंग, शक्ति, शिक्षा और अर्थव्यवस्था संबंधी मुद्दों पर उनके सोच को किस तरह प्रभावित किया है। वे उन मुद्दों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी देखते हैं। उदाहरण स्वरूप मादेलिन आरनोट मानती हैं कि, ''उनके अध्ययन के विषय अभी भी प्रतीकात्मक रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं जब लिंग और सामाजिक वर्ग से संबंधित अध्ययन किए जाते हैं और बुनियादी रूप से परिवर्तनकारी राजनीति से संबंधित आलोचनात्मक अनुसंधान के तरीके विकसित किए जाते हैं।'' पुस्तक के दूसरे भाग में लेखक वर्तमान स्थिति पर ध्यान केन्द्रित करते हैं कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में हो रहे बदलाव किस प्रकार, विशेष रूप से श्रमिक वर्ग की, इतनी बड़ी मात्रा में अच्छी-खासी नौकरियों को समाप्त कर रहे हैं। इनसे वर्ग, प्रजाति और लिंग की गत्यात्मकता (डायनामिक्स) में भी भारी बदलाव आया है और गरीब और हाशिए पर टिके लोगों के लिए और अधिक जटिल चुनौतियां पैदा कर दी हैं। इन चुनौतियों को पुस्तक के भाग तीन में लिया गया है, जिसमें विलिस के विचारों को भी रखा गया है, जो उन्होंने अपने नए आलेख और कल्चरल एन्थ्रोपॉलोजी में प्रकाशित साक्षात्कार में व्यक्त किए थे। गरीबों की भौतिक परिस्थितियों के संदर्भ में दुनिया कितनी बदल चुकी है, इस पर पुनर्चिंतन करते हुए विलिस लिखते हैं कि, ''यह बिल्कुल संभव है कि मैंने उन बच्चों के साथ उस वक्त काम किया जब एक मायने

में असली, पर हमेशा ही मातहत श्रमिक, शक्ति इंगलैण्ड में अन्तिम सांस लेते हुए जश्न मना रही थी।'' अन्ततः वे जोर देकर कहते हैं कि अन्त्योदय के मूल्य को ध्यान में रखते हुए आलोचनात्मक नृ-विज्ञान संबंधी अध्ययनों में हमें लोकप्रिय संस्कृति और युवा वर्ग पर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए-शिक्षा के औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही क्षेत्रों में।

पब्लिक एक्ट्स तीन भागों में बंटा है। प्रोमिजेज टु कीप की ही तरह मुझे मालूम नहीं है कि इस तरह का विभाजन कितना जरूरी या सहायक है। पहले भाग के आलेख 'डिसरप्टिव डिजायर्स' शोधकर्ताओं के अनुभवों पर केन्द्रित है और वे बताते हैं कि सक्रिय परियोजनाओं में वे कैसे काम करते हैं और सामाजिक न्याय से संबंधित कार्य करने में उन्हें किस तरह का संघर्ष करना पड़ता है। गरीबी पर शोध करना, लैंगिक अल्पसंख्यकों के साथ काम करना, भाषा अवगाहन विद्यालय (लैंग्वेज इमर्शन स्कूल) आरंभ करना, सामुदायिक सामान्य शिक्षा परियोजना आरंभ करना- इन सब पर भी लेखकों ने अपने अनुभव लिखे हैं। इबानेज कारास्को के शब्दों में ''इनमें पाठक के लिए आमंत्रण है कि वह इन शोध परियोजनाओं की अनिश्चितता, चिंता और सरोकार तथा दुविधा में सराबोर हों, जिनमें पूर्वाग्रह, प्यार, आकांक्षा और विश्वासघात भी शामिल हैं।'' दूसरा भाग ''ऑडियन्सेस टु पार्टिसिपेन्टस'' में उन जटिलताओं पर विचार किया गया है जिनसे, क्रियात्मक शोध परियोजनाओं में सहभागिता करते हुए, रुबरु होना पड़ता है, खासतौर से तब जब छात्र शोधकर्ता में तब्दील हो जाता है। इन आलेखों में अन्तःक्रियात्मक नाटक, युवा लेखन, संचार माध्यमों में नस्लों का चित्रण और तकनीकी जगत में लिंग समानता की जांच परख की गई है। अन्तिम भाग 'पब्लिक एक्ट्स' में सक्रिय शोधकर्ताओं द्वारा अनुभव किए गए कुछ तनावों का वर्णन किया गया है जिनमें एक नाटक शामिल है जो युद्ध का विरोध करता है और एक चलित संग्रहालय है जो अपने शोक और दुःख पर काबू पाने में लोगों की मदद करता है और फिर से सामुदायिक जीवन की कल्पना करने के लिए प्रेरित करता है। कुल मिलाकर इन आलेखों से शिक्षाविदों/शिक्षाकर्मियों को अपने मन्तव्यों और लक्ष्यों तथा सामाजिक न्याय पर आधारित शैक्षिक क्रिया-कलाप पर अपने विजन के मद्दे नजर पुनर्चिंतन करने का अवसर मिलता है।

सैद्धांतिक संवर्द्धन

समीक्षित तीनों पुस्तकों को जो विषय परस्पर जोड़ता है, वह है सामाजिक न्याय के लिए शिक्षा। जिस तरह लेखक भिन्न और समन्वित तरीके से इस विषय पर बोलते हैं, वह एक ताकत भी है और कमजोरी भी। ताकत इसलिए कि इसमें बहुत सी बानगियां हैं जो बताती हैं कि इस विषय पर सोचने के हमारे क्या तरीके हो सकते हैं और एक बेहतर दुनिया बनाने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कैसे शैक्षिक कार्य में तल्लीन हो सकते हैं। ये संदर्भ यह सीखने के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं कि सामाजिक न्याय के लिए शिक्षण कैसे करें, जो एक जीवनपर्यंत चलने वाला प्रयास हो, जिसमें -

''यह शामिल है कि दूसरों के साथ रिश्तों में व्यक्ति अपने बारे में एक समझ बनाए। इस बात की जांच करते हुए कि समाज अपने विशेषाधिकारों और असमानताओं का निर्माण कैसे करता है और उसके अपने अवसरों और दूसरे विभिन्न लोगों के अवसरों को कैसे प्रभावित करता है; दूसरों के अनुभवों की पड़ताल करते हुए कि वे कैसे दुनिया के प्रति उनके नजरियों, परिप्रेक्ष्यों और अवसरों को प्रभावित करते हैं और इसका मूल्यांकन करते हुए कि विद्यालयों और कक्षाओं में क्या होता है और कैसे उन्हें इस प्रकार का बनाया जाए कि अलग-अलग प्रकार के इंसानों के अनुभवों का मूल्य छात्र समझें और उनसे सीखें।''

आलोचनात्मक कार्य ज्यादा प्रभावी हो, इसके लिए हमें सैद्धान्तिक परंपराओं के समन्वयन, साझे सरोकारों को चिह्नित करने, समस्याप्रद शैक्षिक माहौल जिसमें इस समय हम हैं, का एकजुट तरीके से एक रणनीति के तहत सामना करने और सिद्धांतों की सहज उपलब्धता के लिए और सहज सार से उपलब्ध सिद्धान्त को विकसित करने के लिए सचेतन प्रयास करने होंगे। ये पुस्तकें हमें अन्तर्दृष्टियां और उपकरण उपलब्ध कराती हैं जो इस काम में हमारी मदद कर सकती है, किन्तु इनकी पकड़ बनाने के लिए कुछ श्रम करना पड़ेगा। और यह काम करने की भावना से जब हम तीनों पुस्तकों को पढ़ते हैं तो उनमें सबसे ज्यादा सामग्री इन चीजों पर मिलती है - शिक्षा में आलोचनात्मक कार्य के महत्त्व को पुनः रेखांकित करना, पुराने सिद्धान्त के बारे में सोच के नए तरीके और कई प्रकार के विजन कि हम कैसे नए तरीकों पर शिक्षाकर्मी और नागरिक की हैसियत से आलोचनात्मक सामाजिक न्याय के कार्य को अपने दैनिक जीवन का एक हिस्सा बनाएं। विशिष्ट रूप से ये आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र वैश्वीकरण सिद्धांत और सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्रों में सिद्धांत और व्यवहार मुख्य रूप से दोनों को, समृद्ध करते हैं। इसीलिए यह उपादेय होगा कि हम सिद्धान्त और व्यवहार की दृष्टि से इन क्षेत्रों में इनके योगदान पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालें।

आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र

इन तीनों पुस्तकों के कुछ लेखकों के काम और विचारों की जड़ें आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र की परम्परा में हैं। इस परम्परा से

जो वे लेते हैं वह है पूर्वमान्यताओं के खण्डित करने के महत्त्व पर बल, छात्रों की आवाज और प्रतिनिधित्व के लिए संभावना तलाशना, असमान व्यवहार की पुनरावृत्ति को चुनौती देना और आलोचना और कल्पना दोनों को संतुलित करना। इनका प्रस्थान बिन्दु है कि ''सार्वजनिक शिक्षा गाहे-ब-गाहे वर्ग, प्रजाति और लिंग आधारित तथा अन्य असमानताओं को सतत जारी रखने और उन्हें सही ठहराने के उपक्रम में इतनी धंसी हुई है कि उसे बाहर निकालना मुश्किल है। वे इससे सहमत हैं कि विद्यालयों ने बहुदा मेधा के भ्रम को पैदा करने और न्याय संगत ठहराने में मदद की है न कि उसकी वास्तविकता को। इसके बावजूद उनका विश्वास है कि हम शिक्षकों और छात्रों की सामान्य विवेक को चुनौती देने में मदद कर सकते हैं, प्रतिरोध के लिए जगह बना सकते हैं और सशक्त विकल्पों को निर्मित कर सकते हैं। अंशतः यह काम दुनिया को उपयुक्त संज्ञा देने की क्षमता से शुरू होता है, क्योंकि उसी से दुनिया को देखने का नजरिया भी संभव होता है, जिसमें आमूल परिवर्तन के विकल्पों को देखना भी शामिल है। यही काम कल्पना और एक प्रकार के निर्बाध खुलेपन से भी संभव है। ऐसा खुलापन जो प्रतिनिधिक विचारों के क्रांतिकारी और नवाचारी रूप को और सृजनात्मकता तथा 'सीखने में आनंद' को स्थान दे सके, जो कि सचमुच में सीखना संभव बनाते हैं। शायद सर्वाधिक योगदान इन पुस्तकों का आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र के विमर्श को इस प्रकार की कल्पनाशील प्रैक्टिसेज के ठोस उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत करना है। सिद्धान्त को जब शैक्षिक क्षेत्र में उपलब्ध स्थान पर व्यावहारिक रूप दिया जाता है तब विजन क्या स्वरूप ग्रहण करता है, इससे स्पष्ट होता है। ये उदाहरण आलोचनात्मक साहित्य में एक खाली स्थान की पूर्ति करने में मदद करते हैं, क्योंकि आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र पर प्रायः आरोप लगता रहा है कि इसमें सिद्धान्त की तो भरमार है, पर व्यवहार के बारे में कम कहा गया है।

कैथरिन बेल मैकेन्जी और जेम्स जोसेफ शोयरिख ने पूंजीवाद और शिक्षा के संबंधों पर कुछ पुस्तकों की समीक्षा की थी, जो खासतौर से स्कूलों के व्यावसायीकरण (कॉरपोरेटाइजेशन) पर लिखी गई हैं। अपनी समीक्षा में उन्होंने आलोचनात्मक सिद्धान्त के निर्माताओं की इस वृत्ति की कड़ी आलोचना की है कि वे अमूर्त सैद्धान्तीकरण में लगे रहते हैं, जिसका शैक्षिक प्रैक्टिसेज से ज्यादातर कोई संबंध नहीं होता और जो मुख्यतः सैद्धांतिक को ही पसंद आता है। वे आलोचनात्मक सिद्धांत की अवधारणा के मूल सार को पुनः रचने की बात करते हैं। इसकी उत्पत्ति यथार्थ शैक्षिक प्रैक्टिस और जिए गए संघर्ष में से होनी चाहिए, इसकी पहुंच ज्यादा लोगों तक होनी चाहिए, इसकी निर्मिति स्कूलों और समुदायों के साथ मिलकर की जानी चाहिए और इसकी भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे शिक्षाकर्मी समझते हों। अंततः वे यह चाहते हैं कि, ''आलोचनात्मक शैक्षिक सिद्धान्त की जड़ें, सब बच्चों को अच्छी शिक्षा मिले, इस संवाद में निहित संघर्ष में हों, विद्यालयी शिक्षा में दबी-छिपी गहरी असमानताओं में हों और समतामूलक लोकतंत्र के निर्माण में हों जो सहभागी जीवन जीने वाले मनुष्यों का केन्द्र हो। इन तीनों पुस्तकों में इसी प्रकार के जमीन से जुड़े उदाहरण हैं, जो पारंपरिक और गैर-पारंपरिक शैक्षिक कार्य क्षेत्रों में क्रियान्वित आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्रीय प्रैक्टिसेज से लिए गए हैं। हालांकि इनमें कुछ सैद्धांतिक अमूर्त मान्यताएं भी मिली हुई हैं (उदाहरण के लिए वैश्वीकरण की अर्थवत्ता और वैश्विक पूंजीवाद के बारे में) इन उदाहरणों से हमें शैक्षिक क्षेत्रों में जिन्हें लम्बे समय से नजरन्दाज किया गया है, सीखने-सिखाने के नए तरीके ईजाद करने और उनके लिए समर्थन जुटाने में मदद मिल सकती है।

यद्यपि स्थान की कमी के कारण इन आलोचनात्मक प्रैक्टिसेज के उदाहरणों की गहराई में नहीं जाया जा सकता, इनमें जिस बात पर जोर दिया है, वह है ऐसे अवसरों का निर्माण करना जहां हाशिए पर जी रहे लोग अपनी-अपनी बात कह सकें और उनकी सुनवाई हो। लुई वाइस और मिशेल फाइन के अनुसार ये ऐसे क्षेत्र हैं जो असाधारण वार्ताओं को आगे बढ़ाते हैं, जहां प्रतिभागी को समस्या का सूक्ष्म अर्थ समझने और सामाजिक आलोचना के पक्षधर मिल सकते हैं। ये अवसर स्कूलों और सार्वजनिक संवादों में हो सकते हैं।

आलोचनात्मक प्रैक्टिसेज के हस्तक्षेपी उदाहरणों के अतिरिक्त ऐसे उदाहरण भी हैं जो स्पष्ट करते हैं कि आलोचनात्मकता के प्रति प्रतिबद्ध शोध का आशय क्या है, जिसे प्रायः समुदायों की सहभागिता से किया जाता है। लर्निंग टू लेबर में पॉल विलिस ने हमें नृ-विज्ञान में मानव समूह के 'धरातल से ऊपर' उठने के प्रयास को समझने के लिए किए गए शोध के महत्त्व से रूबरू कराया था। शोध, जो प्रतिभागियों द्वारा जी गई जिन्दगी के यथार्थ पर सवाल पूछने से आरंभ होता है : ''वे किसी चीज का मतलब कैसे निकालते हैं ? दुनिया की छवि उनके मन में क्या है ? जब हम उनसे मिलते हैं तो वे हमारे बारे में क्या सोचते हैं ?'' जब हम ऐसे सवाल पूछते हैं तो हमें मालूम होता है लोग अपने जीवन में अर्थ की निर्मिति कैसे करते हैं, उन्हें आमूल परिवर्तन की संभावनाएं कहां-कहां नजर आती हैं, उनके जीवन में सिद्धान्त की क्या भूमिका है और हम वर्ग भेद को कैसे पाट सकते हैं, जो अकादमिक शोधकर्ताओं और सामुदायिक कार्यकर्ताओं को प्रायः अलग रखता है। पब्लिक एक्ट्स ऐसे जमीनी सच्चाई के उदाहरणों से भरा पड़ा है जिनमें आलोचनात्मक शोध परियोजनाओं का विवरण है, जिनमें एड्स के मरीजों के साथ कार्य

किया गया है, उन महिलाओं के साथ काम हुआ है जो समाज कल्याण विभाग से राहत राशि प्राप्त करती हैं, युवा लेखकों को प्रेरित करने का कार्य हुआ है और एक वैकल्पिक स्कूल आरंभ किया गया है। ये उदाहरण हमें उन चुनौतियों से रूबरू होने में मदद करते हैं जो, वह सामाजिक परिवेश प्रस्तुत करता है, जिसमें हम रहते हैं, जहां लाभकारी रोजगार पाने के लिए गरीबों का संघर्ष दिन-ब-दिन बढ़ रहा है क्योंकि पहली औद्योगिक नौकरियों को नये ढांचे में ढाला जा रहा है, उनका आकार छोटा किया जा रहा है, उनका स्थान बदला जा रहा है और उन्हें समाप्त किया जा रहा है। तीनों पुस्तकों में जो समान विषय हैं, वह यह कि हम 'नये युग' में जी रहे हैं, जो आलोचनात्मक कार्य में भिन्न विजन की मांग करता है। ऐसा विजन जो वैश्वीकरण की चुनौतियों का जवाब हो और नये समय में कार्यकुशलता का परिचायक हो। उदाहरण के लिए पीटर मैकलारेन और रामिन फरहामांदपुर का मानना है कि हमें एक ऐसे आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र को विकसित करने की जरूरत है, जो रोजमर्रा की जिन्दगी को इस तरह से ले मानो वह वैश्विक पूंजीवाद की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति और प्रभाव के बीच बसर की गई हो। यह इस प्रकार का आलोचनाशास्त्र है जिस पर वैश्वीकरण पर केन्द्रित विमर्श का गहरा प्रभाव है। हालांकि वैश्वीकरण पद का प्रयोग 1960 के दशक से हो रहा है, शैक्षिक विमर्श में इसका प्रवेश अपेक्षतया कुछ समय पहले ही हुआ है। इसके अलावा, भले ही यह उस समय का बहुचर्चित शब्द हो, यह नई सदी का ''संभवतः ऐसा शब्द है जिसकी आवधारणात्मक समझ न्यूनतम है।''

वैश्वीकरण

जैसा कि लेखकों ने इन पुस्तकों में लिखा है वैश्वीकरण एक ऐसी शक्ति है जो गरीबों की जिंदगी को तबाह कर रही है। सामान्य अर्थ में वैश्वीकरण का अभिप्राय होता है पूरी दुनिया के लोगों और स्थानों को संघटित करना। यह यात्रा, व्यापार, अन्तर्राष्ट्रीय संचार माध्यमों के नये तरीकों के द्वारा होता है जो तकनीकी क्षेत्र में हुई प्रगति जैसे सेटेलाइट, सेलफोन, इंटरनेट द्वारा तेज गति से आगे बढ़ता है। क्षमताओं और संभावनाओं की दृष्टि से देखें तो इससे विचारों और संसाधनों का आदान-प्रदान हो सकता है जो अधिक वैश्विक समरसता की ओर ले जा सकता है। पर इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग कभी-कभी ही होता है या इस पर चर्चा भी कम ही होती है कि वैश्वीकरण की प्रक्रियाएं वास्तव में कैसे काम करती हैं। यद्यपि वैश्वीकरण के भिन्न प्रकार के बहुत से विजन और परिभाषाएं हैं, इन पुस्तकों में लेखकों ने इस पद का प्रयोग इसके आर्थिक पक्ष को लेकर ही किया है। दुनिया में पूंजीवादी खुले बाजार का अनवरूद्ध विस्तार का अंतिम लक्ष्य लाभ कमाना है और इस लाभ का पीछा करते हुए लोगों की जरूरतों की बलि दे दी जाती है। कैथलीन नोलन और जीन एन्मोन वैश्वीकरण का एक प्रक्रिया के रूप में सटीक वर्णन करते हैं। ऐसी प्रक्रिया जिसमें विश्व के स्तर पर पूंजी की अभिवृद्धि, वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की लचीली व्यवस्थाओं को निर्मित और एकीकृत करना, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर काम करने के अवसरों में वृद्धि और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का विपन्न और सम्पन्न में बंटवारा आदि प्रमुखता से स्थान पाते हैं। इन बड़े बदलावों के कारण काम की दुनिया में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं, जहां कार्मिकों को अपने क्षेत्र में उपलब्ध नौकरियां प्राप्त करना संभव नहीं रह जाता। यद्यपि इन पुस्तकों के लेखकों ने आर्थिक वैश्वीकरण के विचार को विकसित या उसकी विवेचना किए बिना उसकी पृष्ठभूमि को आधार के बतौर मान लिया है, इसके बावजूद उन्होंने वैश्वीकरण के शैक्षिक परिणामों और उसके प्रतिरोध की संभावनाओं पर चल रहे विमर्श को समृद्ध किया है।

इन लेखकों के बीच आम सहमति है कि वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं ने (खासतौर से जिस रूप में पूंजीवाद एक महामारी की तरह फैल रहा है) लोकतांत्रिक और सामाजिक न्याय से सरोकार रखने वाले शिक्षाकर्मियों के लिए नई और ऐसी चुनौतियां पैदा की हैं; जिन पर तुरंत ध्यान दिया जाना आवश्यक है। मिखाइल एपल दुःख के साथ अपनी राय प्रकट करते हुए कहते हैं कि, ''लोकतंत्र अब कोई राजनीतिक अवधारणा नहीं है, बल्कि पूरी तरह से आर्थिक अवधारणा है, जिसके अनुसार असंपृक्त व्यक्ति, जो तथाकथित तौर पर उन्मुक्त बाजार से संबंधित 'तार्किक' निर्णय ले रहे हैं, - अंततः एक बेहतर समाज का नेतृत्व करेंगे। लोकतंत्र के अत्यन्त झीने विचार की दुनिया में विद्यालयी शिक्षा एक अलग अर्थ ग्रहण कर रही है, जहां वे नौकरियां/पद जिन पर छात्र आसीन होने का सपना देखते हैं, लुप्त हो चुकी हैं, जो बची हैं वे अस्थायी हैं, आकस्मिक हैं, 'जनानी' (क्योंकि शारीरिक श्रम की जगह सेवाओं से जुड़ी नौकरियों ने ली है) हैं और काम के अनुसार वेतन भी कम है। जेन केन वे और अन्ना काक ने दो औद्योगिक कस्बों में विचारपूर्वक इन परिवर्तनों को रेखांकित करने का प्रयास किया है। इसमें वे झलकियां दी गई हैं जो बताती हैं कि वर्तमान आर्थिक क्रियाकलापों की प्रवृत्तियों ने 'कैसे अस्थिरता उत्पन्न की और स्थानीय श्रमिक वर्ग के पुरुषों का मनोबल गिरा दिया है।' इन दो कस्बों में जो ऐसे ही अनेक उत्तर आधुनिक क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं, हम उन लोगों के बीच जो 'अवसादग्रस्त आकृतियों' में तब्दील हो चुके हैं, वर्तमान द्वारा एक किनारे कर दिए गए हैं और भूतकाल में जी रहे हैं, सामाजिक विस्थापन, सूनापन, मनमुटाव और अलगाव देखते हैं। आर्थिक वैश्वीकरण का यथार्थ इन स्थितियों को पैदा करता है और

नस्लभेद को गहराता है, क्योंकि जैसा कि फजल रिजवी बताते हैं नई आर्थिक प्रवृत्तियां 'आवश्यक रूप से समावेशित और बहिष्कृत करने वाली नई प्रक्रियाओं' को जन्म देती हैं यानी वे प्रक्रियाएं जो 'अलगाव' पैदा करती हैं।

यह कुछ दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि इन आलेखों में से अधिकांश ने वैश्वीकरण की समझ को पूर्व-मान्यताओं के आधार पर स्वीकार कर लिया है। इससे इस धारणा को बल मिलेगा कि आर्थिक वैश्वीकरण पर आलोचनात्मक विमर्श उपलब्ध नहीं है।

बावजूद इसके कि सही पहचान उकेर पाना कठिन काम है, वे वर्तमान आर्थिक परिवेश और शिक्षा में अलोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की अभिवृद्धि के बीच संबंध स्थापित कर पाई हैं, जिन्हें मानने के लिए विवश होना पड़ता है। उदाहरण के लिए कारलोस एलबर्टो टोरेस मानते हैं कि, वैश्वीकरण के असाधारण घटनाचक्र ने अलगाव को बढ़ाया है जिसे बड़ी संख्या में बच्चे स्कूलों में महसूस करते हैं। एक नाटक में एक सक्रिय शिक्षक की आवाज के माध्यम से वे लिखते हैं कि, ''वैश्विक और स्थानीय के बीच तार्किक बहस दर्शाती है कि स्कूल मुक्त करने की बजाए ऐसा स्थान बनता जा रहा है जहां सत्तावाद, नियंत्रण, सामाजिक व्यवहार की पुनरावृत्ति और अनुशासनाधीन आचरण को प्रश्रय मिल रहा है।'' इसी प्रकार नोलन और एन्योन ने अपने अत्यन्त सशक्त आलेखों में स्कूलों की सत्तावादी और कारागृह के समान स्थितियों (इस बारे में वे उच्च उपलब्धि स्तर परीक्षण, शून्य-सहनशीलता की नीतियां, पुलिस अफसरों की उपस्थिति और निगरानी के यंत्र तथा दण्ड आधारित वैकल्पिक शिक्षण सुविधाओं में वृद्धि का उदाहरण देते हैं) का संबंध आर्थिक क्रिया-कलापों से जोड़ते हैं। वे मानते हैं कि आर्थिक प्रवृत्तियों का संबंध ओद्यौगीकरण और वैश्वीकरण और उन लोगों का प्रबंधन और नियंत्रण करने की जरूरत से है, जो आर्थिक रूप से अनावश्यक हो गए हैं।''

नए आर्थिक माहौल में 'जिसमें हम जी रहे हैं' विद्यालयी शिक्षा किस तरह से प्रभावित हुई है, इसके उदाहरणों के अतिरिक्त इन आलेखों में प्रतिरोध के लिए आशाजनक स्थितियों और अन्य प्रकार की विद्यालयी शिक्षा की संकल्पना की गुंजाइश दिखाई देती है। अन्य चीजों के अलावा शिक्षा के अधिक आशाजनक लोकतांत्रिक विजन के लिए सामाजिक वर्गों से संबंधित मुद्दों पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है और ''सामाजिक वर्गों के ठोस अनुभवों की तरफ वापस लौटने की भी... उनके आधार पर सिद्धांत निर्मित करने के लिए, क्योंकि वे परिस्थितिजन्य ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं जो पूंजीवादी शोषण के खिलाफ संघर्ष के लिए वर्ग आधारित चेतना के भिन्न रूपों को उत्प्रेरित करता है।'' इसके लिए शिक्षा के अर्थ की व्यापक अवधारणा की भी जरूरत है, जो मानक सूचनाओं के अनुस्मरण पर आधारित हो किन्तु समस्याओं के समाधान पर वैचारिक पुनर्चिंतन और सुविचारित कर्म का भी उसमें समावेश हो। ये पुस्तकें हमें याद दिलाती हैं कि हमें छात्रों की मदद करने की जरूरत है ताकि वे अपने आसपास की दुनिया के बारे में, संचार माध्यमों, भाषा प्रतिनिधत्व, सामाजिक संबंधों, लोकप्रिय मनोरंजन और शक्ति के सभी कारणों के बारे में आलोचनात्मक विधि से सोचें। संक्षेप में, हमें उनकी एक भू-मंडलीकृत दुनिया में अधिक सक्रिय नागरिक बनने में मदद करने की आवश्यकता है। वेस्ट हायमर और जोसेक काहने का कहना है कि इस विजन को मुट्ठी में करने के लिए शिक्षा को सहभागितापूर्ण लोकतंत्र को पोषित करना चाहिए। वे मानते हैं कि, मूल रूप से, छात्रों को वो अभिवृत्तियां, कौशल और ज्ञान विकसित करना चाहिए, जो महत्त्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय रूप से काम करने में और सामूहिक प्रयास से एक बेहतर समाज बनाने में उपयोगी हो सके। कई मायनों में, ठीक यही है कि शिक्षा के प्रति सांस्कृतिक अध्ययनों की अप्रोच, जिसके कारण कार्लसन और दिमित्रियादिस इतने आशावान हैं, कि वामपंथी शैक्षिक परियोजनाओं को एक बड़े दायरे में एकजुट करने की होनी चाहिए।

सांस्कृतिक अध्ययन

आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र और वैश्वीकरण की सैद्धांतिक परंपराओं की तरह, शिक्षा के अन्तर्गत सांस्कृतिक अध्ययन की अर्थवत्ता को संक्षेप में प्रस्तुत करना कठिन काम है। दिमित्रियादिस और कार्लसन शिक्षा में सांस्कृतिक अध्ययन को आशा, प्रतिरोध और वैकल्पिक विजन के लिए तथा सामाजिक न्याय से संबंधित कार्य को एक रणनीति के तहत एकीकृत करने के लिए जगह बनाने के कारक के रूप में देखते हैं। ऐसा इसलिए ''क्योंकि इसने (सांस्कृतिक अध्ययन) उन सीमाओं को तोड़ा है जो पारंपरिक अकादमिक अनुशासनों को अलग करती है और पहचान बनाने में लोकप्रिय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर जोर दिया है; सांस्कृतिक अध्ययन ने शिक्षा पर पुनर्चिंतन के लिए बौद्धिक और राजनीतिक पक्ष को स्थापित करना आरंभ कर दिया है।'' लोकप्रिय शैक्षणिक परियोजनाओं और इंगलैण्ड के बरमिंघम के आस-पास के श्रमिक वर्ग के अध्ययनों से उत्पन्न सांस्कृतिक अध्ययन पिछले 40 वर्षों में अकादमिक कार्य करने के एक खास अन्तर-अनुशासनात्मक (इन्टर डिसिप्लेनरी) तरीके के रूप में विकसित हुआ है। इसके लक्ष्यों में शामिल हैं शक्ति और ज्ञान के बीच संबंध को समझना, यह देखना कि शक्ति कैसे प्रतीकात्मक और प्रतिनिधित्वकीय रूप में अपना स्वरूप ग्रहण करती है, उस सामाजिक व्यवहार का सामना करने के लिए जो शक्तिहीन

बनाता है तथा प्रतिरोध और बुनियादी सामाजिक बदलाव के लिए जिनसे संसाधन हाथ में आ जाते हैं। यद्यपि केवल *प्रोमिजेज टू कीप* लेखकों द्वारा स्पष्टतः सांस्कृतिक अध्ययन की परंपरा में लिखी गई है (और इसमें भी प्रत्यक्ष संबंधों को केवल प्रस्तावना वाले अध्याय में और कुछ आलेखों में दर्शाया गया है), ये तीनों संग्रह विशिष्ट तरीकों से हमारे सांस्कृतिक अध्ययन के विजन को समृद्ध करते हैं। *लर्निंग टु लेबर इन न्यू टाइम्स* हमें सांस्कृतिक अध्ययन के कार्य में वर्ग विश्लेषण के महत्त्व की याद दिलाता है। एक ऐसा विषय जिसे मैंने आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र और वैश्वीकरण की विवेचना करते समय उठाया है। *प्रोमिजेज टु कीप* ने कुछ उम्दा उदाहरण दिए हैं जिनमें बताया गया है कि अकादमिक पड़ताल के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में लोकप्रिय संस्कृति को गंभीरता से लेने और सामाजिक न्याय के संसाधनों के रूप में उपयोग करने का मतलब क्या होता है।

सांस्कृतिक अध्ययन के कार्य की गुणवत्ता की पहचान का एक महत्त्वपूर्ण मानक है लोकप्रिय संस्कृति को तवज्जो देना। लोकप्रिय संस्कृति महत्त्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि यह अहम तरीके से लोगों को अपनी जिन्दगी को अर्थ प्रदान करने और भावी संभावनाओं की कल्पना करने में प्रभावित करती है। यह उन प्रतीकों और कलात्मक चीजों को भी प्रस्तुत करती है जिनके द्वारा लोग अपनी पहचान बनाते हैं और प्रतिनिधित्व का हक जताते हैं।

सांस्कृतिक अध्ययन का एक अन्य केन्द्रीय विषय है अकादमिक कार्य द्वारा यथार्थ की दुनिया में बदलाव लाना अर्थात् अकादमी की चारदीवारी से बाहर निकलना। यद्यपि सांस्कृतिक अध्ययन का साहित्य इस गुहार से भरा पड़ा है, शैक्षणिक व्यवहार में इस प्रकार के वास्तविक उदाहरण कम ही देखने को मिलते हैं। यहां पब्लिक एक्ट्स के आलेखों का जिक्र करना खासतौर से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इस संग्रह के लेखकों ने सार्वजनिक समस्याओं पर सार्वजनिक स्थानों के निषिद्ध क्षेत्र में काम करने की संभावनाओं को दर्शाया है। यह कार्य यद्यपि जल्दबाजी में उड़ान भरने जैसा है, जिसमें यह खोजने का प्रयास किया गया है कि सच्चे मायने में ऐसा सार्वजनिक विमर्श कैसे किया जाए जो शिक्षा की पहुंच में हो। उदाहरण के लिए, वे वैकल्पिक शैक्षणिक कार्यक्रमों का वर्णन करते हैं और यह जानने का प्रयास है कि इनका कार्यक्रम पर क्या प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से वंचित वर्ग के छात्रों पर। वे यह भी बताते हैं कि अकादमिक और सक्रिय सामाजिक कार्य में संतुलन बनाए रखने में किस प्रकार की चुनौतियां हैं और जिस समुदाय पर शोध कर रहे हैं उससे भावात्मक लगाव हो जाने के कारण भावानात्मक स्तर पर उसकी क्या कीमत चुकानी पड़ती है। ये वृत्तचित्र, वास्तविक दुनिया में सांस्कृतिक अध्ययन के कार्य के मायने क्या होते हैं, इससे संबद्ध साहित्य को समृद्ध करते हैं न कि सिर्फ अकादमी के भव्य भवन की शोभा बढ़ाते हैं।

सामाजिक न्याय के लिए शिक्षा का योगदान

कुल मिलाकर तीनों संपादित संग्रहों के लेखक, जिनकी समीक्षा की गई है निहित अथवा स्पष्ट रूप में हमारे शैक्षिक सोच में सामाजिक न्याय के मुद्दों को केन्द्रीय विषय के रूप में अग्रणी स्थान पर रखते हैं। जैसा कि मैंने इस आलेख में आरंभ से अंत तक कहा है कि इन पुस्तकों की सबसे बड़ी ताकत यह है कि ये विविध और विश्वस्त करने वाले विजन प्रस्तुत करती हैं जिनमें दिखाया गया है कि शिक्षाकर्मी किस प्रकार सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्तर पर प्रगतिशील और सामाजिक परिवर्तन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को जीते हैं। ये विजन ऐसी अस्थिरता पैदा करने में मदद करते हैं जिसे हम पहले ही स्वीकार कर चुके हैं। वे शिक्षा की लोकतांत्रिक संभावनाओं की अधिक पूर्णता के साथ कल्पना करने में मदद करते हैं विशेषकर ऐसी स्थिति में जब लोकतंत्र की जीवन जीने के एक तरीके के रूप में संकल्पना की जाती है, जिसमें लोग हमेशा एक प्रकार के आत्म-शिक्षण में लगे रहते हैं सार्वजनिक विमर्श और बहस के द्वारा, अपने विश्वासों पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए और जो अच्छा और न्याय संगत है, उसके प्रति खुलापन रखते हुए। ऐसा होने पर भी और इसके बावजूद कि इनमें से बहुत से विजन अपने, विजन हमारे विजन को समृद्ध करते हैं, इनमें ज्यादा ऐसा कुछ नहीं है जो एक-दूसरे को बांधता हो या कि वामपंथी शैक्षिक विमर्शों के बीच के फासले को कम करने के लिए एक सेतु का काम करता हो, जिसके सरोकार समान हों। परिणामतः पाठकों के पास समग्र विचार न पहुंचकर उसके कुछ अंश और उत्प्रेरित करने वाले विचार ही पहुंचते हैं। उन पाठकों को जो सामाजिक न्याय के लिए शिक्षा में दक्ष हैं, इन विचारों के कुछ अंश प्रेरित कर सकते हैं लेकिन इसके बावजूद अधूरेपन की कमी खलेगी; वे कुछ और अधिक चाहेंगे - ऐसा कुछ जो भिन्न धाराओं को पार कर संवाद स्थापित कर सके, जो ठोस उपाय (उपकरण) और दिशाएं प्रस्तुत करता हो और जो प्रगतिशील सिद्धान्तों के बीच सहयोगात्मक संवाद का प्रतिनिधित्व करता हो।◆